अकेले बेटे। उनकी प्रसन्नता ही हमारे जीवन का स्वर्ग थी। पढ़ना-लिखना तो दूर रहा, विलास की इच्छा बढ़ती गयी। रंग और गहरा हुआ, अपने जीवन का ड्रामा खेलने लगे। मैंने यह रंग देखा तो मुझे चिंता हुई। सोचा, ब्याह कर दूँ, ठीक हो जायेगा। गोपा देवी का पैगाम आया, तो मैंने तुरंत स्वीकार कर लिया। मैं सुन्नी को देख चुका था। सोचा, ऐसी रूपवती पत्नी पाकर इनका मन स्थिर हो जायेगा, पर वह भी लाड़ली लड़की थी-हठीली, अबोध, आदर्शवादिनी। सहिष्णुता तो उसने सीखी ही न थी। समझौते का जीवन में क्या मूल्य है, इसकी उसे खबर ही नहीं। लोहा लोहे से लड़ गया। वह अभिमान से पराजित करना चाहती है, यह उपेक्षा से, यही रहस्य है। और साहब मैं तो बहू को ही अधिक दोषी समझता हूँ। लड़के प्राय मनचले होते हैं। लड़कियाँ स्वभाव से ही सुशील होती हैं और अपनी जिम्मेदारी समझती हैं। उसमें ये गुण ही नहीं। डोंगा कैसे पार होगा ईश्वर ही जाने।

सहसा सुन्नी अंदर से आ गयी। बिल्कुल अपने चित्र की रेखा सी, मानो मनोहर संगीत की प्रतिध्वनि हो। कुंदन तपकर भस्म हो गया था। मिटी हुई आशाओं का इससे अच्छा चित्र नहीं हो सकता। उलाहना देती हुई बोली- आप न जाने कब से बैठे हुए हैं, मुझे खबर तक नहीं और शायद आप बाहर ही बाहर चले भी जाते?

मैंने आँसुओं के वेग को रोकते हुए कहा- नहीं सुन्नी, यह कैसे हो सकता था तुम्हारे पास आ ही रहा था कि तुम स्वयं आ गयी।

मदारीलाल कमरे के बाहर अपनी कार की सफाई करने लगे। शायद मुझे सुन्नी से बात करने का अवसर देना चाहते थे।

सुन्नी ने पूछा-अम्माँ तो अच्छी तरह हैं?

'हाँ अच्छी हैं। तुमने अपनी यह क्या गत बना रखी है।'

'मैं अच्छी तरह से हूँ।'

'यह बात क्या है? तुम लोगों में यह क्या अनबन है। गोपा देवी प्राण दिये डालती हैं। तुम खुद मरने की तैयारी कर रही हो। कुछ तो विचार से काम लो।'

सुन्नी के माथे पर बल पड़ गये- आपने नाहक यह विषय छेड़ दिया चाचा जी! मैंने तो यह सोचकर अपने मन को समझा लिया कि मैं अभागिन हूँ। बस, उसका निवारण मेरे बूते से बाहर है। मैं उस जीवन से मृत्यु को कहीं अच्छा समझती हूँ, जहाँ अपनी कदर न हो। मैं व्रत के बदले में व्रत चाहती हूँ। जीवन का कोई दूसरा रूप मेरी समझ में नहीं आता। इस विषय में किसी तरह का समझौता करना मेरे लिए असंभव है। नतीजे की मैं परवाह नहीं करती।

लेकिन...

नहीं चाचाजी, इस विषय में अब कुछ न कहिए, नहीं तो मैं चली जाऊँगी।

आखिर सोचो तो...

मैं सब सोच चुकी और तय कर चुकी। पशु को मनुष्य बनाना मेरी शक्ति से बाहर है।

इसके बाद मेरे लिए अपना मुँह बंद करने के सिवा और क्या रह गया था?

मई का महीना था। मैं मंसूर गया हुआ था कि गोपा का तार पहुँचा- ' तुरंत आओ, जरूरी काम है।' मैं घबरा तो गया लेकिन इतना निश्चित था कि कोई दुर्घटना नहीं हुई है। दूसरे दिन दिल्ली जा पहुँचा। गोपा मेरे सामने आकर खड़ी हो गयी, निस्पंद, मूक, निष्प्राण, जैसे तपेदिक की रोगी हो।

'मैंने पूछा कुशल तो है, मैं तो घबरा उठा।'

उसने बुझी हुई आँखों से देखा और बोली- सच!

'सुन्नी तो कुशल से है।'

हाँ, अच्छी तरह है।

और केदारनाथ?

वह भी अच्छी तरह है।

तो फिर माजरा क्या है?

कुछ तो नहीं।

तुमने तार दिया और कहती हो- कुछ तो नहीं?

दिल घबरा रहा था, इससे तुम्हें बुला लिया। सुन्नी को किसी तरह समझाकर यहाँ लाना है। मैं तो सब कुछ करके हार गयी।

क्या इधर कोई नयी बात हो गयी।

नयी तो नहीं है, लेकिन एक तरह में नयी ही समझो, केदार एक ऐक्ट्रेस के साथ कहीं भाग गया। एक सप्ताह से उसका कहीं पता नहीं है। सुन्नी से कह गया है- जब तक तुम रहोगी घर में नहीं आऊँगा। सारा घर सुन्नी का शत्रु हो रहा है, लेकिन वह वहाँ से टलने का नाम नहीं लेता। सुना है केदार अपने बाप के दस्तखत बनाकर कई हजार रूपये बैंक से ले गया है।

तुम सुन्नी से मिली थीं?

हाँ, तीन दिन से बराबर जा रही हूँ।

वह नहीं आना चाहती, तो रहने क्यों नहीं देती।

वहाँ घुट घुटकर मर जायेगी।

मैं उन्हीं पैरों लाला मदारीलाल के घर चला। हालाँकि मैं जानता था कि सुन्नी किसी तरह न आयेगी, मगर वहाँ पहुँचा तो देखा कुहराम मचा हुआ है। मेरा कलेजा धक से रह गया। वहाँ तो अर्थी सज रही थी। मुहल्ले के सैकड़ों आदमी जमा थे। घर में से हाय! हाय! की क्रंदन-ध्वनि आ रही थी। यह सुन्नी का शव था।

मदारीलाल मुझे देखते ही मुझसे उन्मत की भाँति लिपट गये और बोले-

भाई साहब, मैं तो लुट गया। लड़का भी गया, बहू भी गयी, जिन्दगी ही गारत हो गयी।

मालूम हुआ कि जब से केदार गायब हो गया था, सुन्नी और भी ज्यादा उदास रहने लगी थी। उसने उसी दिन अपनी चूड़ियाँ तोड़ डाली थीं और माँग का सिंदूर पोंछ डाला था। सास ने जब आपत्ति की, तो उनको अपशब्द कहे। मदारीलाल ने समझाना चाहा तो उन्हें भी जली-कटी सुनायी। ऐसा अनुमान होता था- उन्माद हो गया है। लोगों ने उससे बोलना छोड़ दिया था। आज प्रातःकाल यमुना स्नान करने गयी। अंधेरा था, सारा घर सो रहा था, किसी को नहीं जगाया। जब दिन चढ़ गया और बहू घर में न मिली, तो उसकी तलाश होने लगी। दोपहर को पता लगा कि यमुना गयी है। लोग उधर भागे। वहाँ उसकी लाश मिली। पुलिस आयी, शव की परीक्षा हुई। अब जाकर शव मिला है। मैं कलेजा थामकर बैठ गया। हाय, अभी थोड़े दिन पहले जो सुन्दरी पालकी पर सवार होकर आयी थी, आज वह चार के कंधे पर जा रही है!

मैं अर्थी के साथ हो लिया और वहाँ से लौटा, तो रात के दस बज गये थे। मेरे पाँव काँप रहे थे। मालूम नहीं, यह खबर पाकर गोपा की क्या दशा होगी। प्राणांत न हो जाये, मुझे यही भय हो रहा था। सुन्नी उसकी प्राण थी। उसकी जीवन का केन्द्र थी। उस दुखिया के उद् ?यान में यही पौधा बच रहा था। उसे वह हृदय रक्त से सींच-सींचकर पाल रही थी। उसके वसंत का सुनहरा स्वप्न ही उसका जीवन था उसमें कोपलें निकलेंगी, फूल खिलेंगे, फल लगेंगे, चिड़िया उसकी डाली पर बैठकर अपने सुहाने राग गावेंगी, किन्तु आज निष्ठुर नियति ने उस जीवन सूत्र को उखाड़कर फेंक दिया। और अब उसके जीवन का कोई आधार न था। वह बिन्दु ही मिट गया था, जिस पर जीवन की सारी रेखाएँ आकर एकत्र हो जाती थीं।

दिल को दोनों हाथों से थामे, मैंने जंजीर खटखटायी। गोपा एक लालटेन लिए निकली। मैंने गोपा के मुख पर एक नये आनंद की झलक देखी।

मेरी शोक-मुद्रा देखकर उसने मातृवत् प्रेम से मेरा हाथ पकड़ लिया और बोली- आज तो तुम्हारा सारा दिन रोते ही कटा। अर्थी के साथ बहुत से आदमी रहे होंगे। मेरे जी में भी आया कि चलकर सुन्नी के अंतिम दर्शन कर लूँ। लेकिन मैंने सोचा, जब सुन्नी ही न रही, तो उसकी लाश में क्या रखा है! न गयी।

मैं विस्मय से गोपा का मुँह देखने लगा। तो इसे यह शोक-समाचार मिल चुका है। फिर भी यह शांति और अविचल धैर्य! बोला- अच्छा किया, न गयी रोना ही तो था।

हाँ, और क्या? रोयी यहाँ भी, लेकिन तुमसे सच कहती हूँ, दिल से नहीं रोयी। न जाने कैसे आँसू निकल आए। मुझे तो सुन्नी की मौत से प्रसन्नता हुई। दुखिया अपनी मान मर्यादा लिए संसार से विदा हो गयी, नहीं तो न जाने क्या क्या देखना पड़ता। इसलिए और भी प्रसन्न हूँ कि उसने अपनी आन निभा दी। स्त्री के जीवन में प्यार न मिले तो उसका अंत हो जाना ही अच्छा। तुमने सुन्नी की मुद्रा देखी थी? लोग कहते हैं, ऐसा जान पड़ता था- मुस्करा रही है। मेरी सुन्नी सचमुच देवी थी। भैया, आदमी इसलिए थोड़े ही जीना चाहता है कि रोता रहे। जब मालूम हो गया कि जीवन में दुःख के सिवा कुछ नहीं है, तो आदमी जीकर क्या करे। किसलिए जिये? खाने और सोने और मर जाने के लिए? यह मैं नहीं कहती कि मुझे सुन्नी की याद न आयेगी और मैं उसे याद करके रोऊँगी नहीं। लेकिन वह शोक के आँसू न होंगे। बहादुर बेटे की माँ उसकी वीरगति पर प्रसन्न होती है। सुन्नी की मौत मे क्या कुछ कम गौरव है? मैं आँसू बहाकर उस गौरव का अनादर कैसे करूँ? वह जानती है, और चाहे सारा संसार उसकी निंदा करे, उसकी माता सराहना ही करेगी। उसकी आत्मा से यह आनंद भी छीन लूँ? लेकिन अब रात ज्यादा हो गयी है। ऊपर जाकर सो रहो। मैंने तुम्हारी चारपाई बिछा दी है, मगर देखो, अकेले पड़े-पड़े रोना नहीं। सुन्नी ने वही किया, जो उसे करना चाहिए था। उसके पिता होते, तो आज सुन्नी की प्रतिमा बनाकर पूजते।

मैं ऊपर जाकर लेटा, तो मेरे दिल का बोझ बहुत हल्का हो गया था, किन्तु रह-रहकर यह संदेह हो जाता था कि गोपा की यह शांति उसकी अपार व्यथा का ही रूप तो नहीं है?

दूसरों की सहायता करना संत रैदास जी के स्वभाव में था

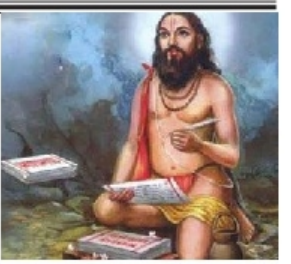

पिछली सदी के क्रांतिकारी विचारक आचार्य रजनीश ओशो ने ऋषि-मुनियों, गुरुओं व महापुरुषों से सुसज्जित भारतीय तारामंडल में संत रविदास जी को ध्रुव तारा बताया। ध्रुव तारा यानि स्थिरप्रज्ञता, मार्गदर्शन और भक्ति का संगम। गुरु रविदास जी जिस समय पैदा हुए देश में विदेशियों का शासन था, राजनीतिक व आध्यात्मिक अस्थिरता चारों ओर व्याप्त थी। पीड़ित समाज में भक्ति का स्थान तरह-तरह के कर्मकांडों ने ले लिया। ऐसे में समाज के लिए ध्रुवतारा बन कर आए रविदास जी। अपनी शिक्षाओं में गुरुजी ने जहां पराधीनता को पाप बताया वहीं ऐसे राज्य बेगमपुरा की कल्पना की जो अन्न-धन, समरसता से संपन्न हो। किसी को अभावग्रस्त जीवन जीने को विवश न होना पड़े। अपने महापुरुषों की इसी भावना को मूर्तरूप प्रदान करने को पिछली सदी में एक आंदोलन की शुरुआत हुई, जिसे आज राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के नाम से जाना जाता है। संघ के संस्थापकों ने अपने सम्मुख इन्हीं लक्ष्यों पूर्ण स्वराज्य और परम्वैभ प्राप्ति का लक्ष्य रखा। कहने का भाव कि बेगमपुरा और परम्वैभव शाब्दिक रूप से भिन्न दिखते हों परंतु इनका अर्थ एक ही है। गुरु रविदास जी व इन जैसे अनेकों महारुपुषों के आदर्शों की पूर्ति के लिए ही निरंतर साधनारत है संघ।

गुरु रविदास जी से पूर्व उनके गुरु रामानंद जी के बारे में जानना जरूरी है। 14वीं सदी में देश विदेशी आक्रांताओं से पददलित था। ऐसे समय में एक ब्राह्मण परिवार में जन्म हुआ स्वामी रामानंद जी का जिन्होंने समाज में समरसता को स्थापित करने के लिए राम भक्ति का द्वार सबके लिए सुलभ कर दिया। उन्होंने अपने यहां निर्गुण व सगुण दोनों भक्ति की धाराओं को स्थान दिया। उन्होंने संत रविदास के साथ-साथ अनंतानंद, भावानंद, पीपा, सैन, धन्ना, नाभा दास, नरहर्यानंद, सुखानंद, कबीर, सुरसरी, पदमावती जैसे बारह लोगों को अपना प्रमुख शिष्य बनाया, जिन्हें द्वादश महाभागवत के नाम से जाना जाता है। इनमें कबीर और रविदास ने निर्गुण राम की उपासना की। स्वामी रमानंद ने गुरुमंत्र दिया 'जात-पात पूछे ना कोई-हरि को भजै सो हरी का होई।' उन्होंने 'सर्वे प्रपत्तेधिकारिणों मता' का शंखनाद किया और भक्ति का मार्ग सबके लिए खोल दिया। उन्होंने महिलाओं को भी भक्ति के मार्ग में समान स्थान दिया।

यह स्वामी रामानंद के ही व्यक्तित्व का प्रभाव था कि हिंदू-मुस्लिम वैमनस्य, शैव-वैष्णव विवाद, वर्ण-विद्वेष, मत-मतांतर का झगड़ा और परस्पर सामाजिक कटुता बहुत हद तक कम हो गई। उनके ही यौगिक शक्ति से प्रभावित होकर तत्कालीन मुगल शासक मोहम्मद तुगलक संत कबीरदास के माध्यम से स्वामी रामानंदाचार्य की शरण में आया। तुगलक ने हिंदुओं पर लगे समस्त प्रतिबंध और जजिया कर को हटाने का निर्देश जारी किया। बलपूर्वक इस्लाम धर्म में दीक्षित हिंदुओं को फिर से हिंदू धर्म में वापस लाने के लिए परावर्तन संस्कार का महान कार्य स्वामी रामानंदाचार्च ने ही प्रारंभ किया। इतिहास साक्षी है कि अयोध्या के राजा हरिसिंह के नेतृत्व में चौंतीस हजार राजपूतों को एक ही मंच से स्वामीजी ने स्वधर्म अपनाने के लिए प्रेरित किया था।

रामानंद जी इस बात से चिंतित थे कि हिंदू समाज का एक वर्ग को वंचित है वह बड़ी तेजी से इस्लाम की ओर आकर्षित हो रहा है। इस क्रम को रोकने व स्वजनों को मुख्यधारा में बनाए रखने के उनके उद्देश्य की पूर्ति की गुरु रविदास जी ने। गुरु रविदास जी का जन्म काशी में चर्मकार कुल में हुआ। उनके पिता का नाम संतोख दास (रग्घु) और माता का नाम कलसा देवी बताया जाता है। रैदास ने साधु-सन्तों की संगति से पर्याप्त व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त किया था। जूते बनाने का काम उनका पैतृक व्यवसाय था और उन्होंने इसे सहर्ष अपनाया। वे अपना काम पूरी लगन तथा परिश्रम से करते थे और समय से काम को पूरा करने पर बहुत ध्यान देते थे। प्रारम्भ से ही रविदास जी बहुत परोपकारी तथा दयालु थे और दूसरों की सहायता करना उनका स्वभाव बन गया था। साधु-सन्तों की सहायता करने में उनको विशेष आनन्द मिलता था। वे उन्हें प्राय: मूल्य लिये बिना जूते भेंट कर दिया करते थे। अत्यंत दीन-हीन दशा में रहते हुए भी वे ईश्वर भक्ति में लगे रहते और उनकी पूरे देश में फैल गई। इसी से प्रभावित हो कर मेवाड़ की रानी मीरा उनकी शिष्या बनी। गुरु रविदास जी देश की पराधीन से बहुत दुखी थे और अपने शिष्यों को संदेश देते थे कि -

पराधीनता पाप है, जान लेहु रे मीत।
रैदास दास पराधीन सो, कौन करे है प्रीत।।

रैदास जी विनम्र भाव से कहते हैं कि हे मित्र, इस संसार में किसी की गुलामी स्वीकारना, उसके अधीन रहना सबसे बड़ा पाप है इसलिए मनुष्य को कभी गुलाम बन कर नहीं रहना चाहिए तथा जो गुलाम होते हैं उनसे कोई प्रेम भी नहीं करता। एक खुशहाल समाज की कल्पना करते हुए वे कहते थे कि -

ऐसा चाहू राज मैं, जहाँ मिले सबन को अन्न।
छोट बड़ो सब सम बसै, रैदास रहे प्रसन्न।।

रैदास जी ऐसे समाज में ऐसी शासन व्यवस्था चाहते हैं जहाँ सबको भोजन मिले, कोई भी भूखा न सोये और जहाँ छोटे-बड़े की कोई भावना न रहे। सभी मनुष्य समान हो और प्रसन्न रहे इसी में रैदास भी प्रसन्न है। देश के समस्त महापुरुषों के प्रति सम्मान भाव रखने वाले राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने भी अपनी स्थापना के समय इन दोनों लक्ष्यों पूर्ण स्वराज्य और परम्वैभव को ही अपने सम्मुख रखा। संघ के एकातमस्त्रोत्म में अन्य महापुरुषों की भांति गुरु रविदास जी महाराज का नाम प्रतिदिन बड़े आदर के साथ लिया जाता है। संघ की प्रार्थना में प्रतिदिन ईश्वर से मांगा जाता है कि -

परं वैभवं नेतुमेतत् स्वराष्ट्रं।
समर्था भवत्वाशिषा ते भृशम्॥

अर्थात ईश्वर की कृपा से हमारी यह विजयशालिनी संगठित कार्यशक्ति हमारे धर्म का संरक्षण कर इस राष्ट्र को वैभव के उच्चतम शिखर पर पहुँचाने में समर्थ हों। गुरु रविदास जी महाराज की जयंती पर आओ हम अपने देश, समाज को आगे ले जाते हुए एक सज्जन शक्ति का विकास कर मानवता का भला करने का संकल्प लें।